विभावरी श्रीर्दिवसो देवश्चक्रगदाधरः। वरप्रदो वरो विष्णुर्वधूः पद्मवनालया ॥३१॥
नदस्वरूपी भगवाञ्छ्रीर्नदीरूपसंस्थिता। ध्वजश्च पुण्रीकाक्षः पताका कमलालया ॥३२॥
तृष्णा लक्ष्मीर्जगन्नाथो लोभो नारायणः परः। रती रागश्च मैत्रेय लक्ष्मीर्गोविन्द एव च ॥३३॥
किं चातिबहुनोक्तेन संक्षेपेणेदमुच्यते ॥३४॥
देवतिर्यङ्मनुष्यादौ पुन्नामा भगवान्हरिः। स्त्रीनाम्नी श्रीश्च विज्ञेया नानयोर्विद्यते परम् ॥३५॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे अष्टमोऽध्यायः ॥८॥

नवाँ अध्याय

श्रीपराशर उवाच

इदं च शृणु मैत्रेय यत्पृष्टोऽहमिह त्वया। श्रीसम्बन्धं मयाप्येतच्छ्रुतमासीन्मरीचितः ॥१॥
दुर्वासाः शङ्करस्यांशश्चचार पृथिवीमिमाम्। स ददर्श स्त्रजं दिव्यामृषिर्विद्याधरीकरे ॥२॥
सन्तानकानामखिलं यस्या गन्धेन वासितम्। अतिसेव्यमीभूद्ब्रह्मन् तद्वनं वनचारिणाम् ॥३॥
उन्मत्तव्रतधृग्विप्रस्तां दृष्ट्वा शेभनां स्त्रजम्। तां ययाचे वरारोहां विद्याधरवधूं ततः ॥४॥

करने वाले श्रीभगवान् दिन हैं तो लक्ष्मीजी रात्रि हैं। वर प्रदान करने वाले वर भगवान् विष्णु हैं और कमल वन में निवास करने वाली लक्ष्मीजी वधू स्वरूपिणी हैं ॥३१॥ भगवान् विष्णु नद स्वरूप हैं और लक्ष्मीजी नदी रूप से स्थित हैं। भगवान् पुण्डरीकाक्ष ध्वज स्वरूप हैं और कमलालया लक्ष्मीजी पताका स्वरूपिणी हैं ॥३२॥ परमात्मा जगत् स्वामी भगवान् नारायण यदि लोभ हैं तो लक्ष्मीजी तृष्णा स्वरूपिणी हैं। हे मैत्रेय ! भगवान् गोविन्द राग-स्वरूप हैं और लक्ष्मीजी रति स्वरूपिणी हैं ॥३३॥ मैत्रेय ! बहुत अधिक कहने से क्या मतलब है ? संक्षेप में बतलाता हूँ ॥३४॥ देवता, तिर्यक्, तथा मनुष्यों में पुरुषवाची भगवान् श्रीहरि हैं और स्त्री वाची श्रीलक्ष्मी जी हैं, इन दोनों से भिन्न कुछ भी नहीं है ॥३५॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के आठवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥८॥

महर्षि दुर्वासा के शाप से इन्द्र का पराजय, ब्रह्माजी की स्तुति से प्रसन्न होकर श्रीभगवान् का प्रकट होकर देवताओं को समुद्र मन्थन का उपदेश करना और देवताओं द्वारा समुद्र मन्थन

श्रीपराशर महर्षि ने कहा— हे मैत्रेय ! तुमने जो मुझसे यहाँ पूछा है, वह श्रीलक्ष्मीजी के विषय में मैंने मरीचि महर्षि से सुना था। वह लक्ष्मीजी का सम्बन्ध (इतिहास) तुम्हें सुनाता हूँ, उसे तुम सावधानी से सुनो ॥१॥ भगवान् शङ्कर के अंश स्वरूप महर्षि दुर्वासा पृथिवी पर भ्रमण कर रहे थे; उन महर्षि ने किसी विद्याधरी के हाथ में दिव्य माला को देखा ॥२॥ वह माला पूर्णरूप से सन्तान (पारिजात) पुष्प से निर्मित थी। उसकी सुगन्धि से सम्पूर्ण वन वनचारियों के लिए अत्यन्त सेवनीय हो गया था ॥३॥ उन्मत्त का व्रत धारण करने वाले विप्र दुर्वासाजी ने उस सुन्दर माला को उस सुन्दरी विद्याधरी से माँगा ॥४॥ उनके माँगने पर विशाल नेत्रों वाली उस विद्याधरी ने महर्षि को

याचिता तेन तन्वङ्गी मालां विद्याधराङ्गना। ददौ तस्मै विशालाक्षी सादरं प्रणिपत्य तम्॥५॥
तामादायात्मनो मूर्ध्नि स्त्रजमुन्मत्तरूपधृक्। कृत्वा स विप्रो मैत्रेय परिबभ्राम मेदिनीम्॥६॥
स ददर्श तमायान्तमुन्मत्तैरावते स्थितम्। त्रैलोक्याधिपतिं देवं सह देवैः शचीपतिम्॥७॥
तामात्मनः स शिरसः स्त्रजमुन्मत्तषट्पदाम्। आदायमरराजाय चिक्षेपोन्मत्तवन्मुनिः॥८॥
गृहीत्वाऽमरराजेन स्त्रगैरावतमूर्द्धनि। न्यस्ता रराज कैलासशिखरे जाह्नवी यथा॥९॥
मदान्धकारिताक्षोऽसौ गन्धाकृष्टेन वारणः। करेणाघ्राय चिक्षेप तां स्त्रजं धरणीतले॥१०॥
ततश्चुक्रोध भगवान्दुर्वासा मुनिसत्तमः। मैत्रेय देवराजं तं क्रुद्धश्चैतदुवाच ह॥११॥

दुर्वासा उवाच

ऐश्वर्यमददुष्टात्मन्नतिस्तब्धोऽसि वासव। श्रियो धाम स्त्रजं यस्त्वं मद्दत्तां नाभिनन्दसि॥१२॥
प्रसाद इति नोक्तं ते प्रणिपातपुरः सरम्। हर्षोत्फुल्लकपोलेन न चापि शिरसा धृता॥१३॥
मया दत्तामिमां मालां यस्मान्न बहु मन्यसे। त्रैलोक्यश्रीरतो मूढ विनाशमुपयास्यति॥१४॥
मां मन्यसे त्वं सदृशं नूनं शक्रेतरद्विजैः। अतोऽवमानमस्मासु मानिना भवता कृतम्॥१५॥
मद्दत्ता भवता यस्मात्क्षिप्ता माला महीतले। तस्मात्प्रणष्टलक्ष्मीकं त्रैलोक्यं ते भविष्यति॥१६॥
यस्य सञ्जातकोपस्य भयमेति चराचरम्। तं त्वं मामतिगर्वेण देवराजावमन्यसे॥१७॥

श्रीपराशर उवाच

महेन्द्रो वारणस्कन्धादवतीर्य त्वरान्वितः। प्रसादयामास मुनिं दुर्वाससमकल्मषम्॥१८॥

प्रणाम करके उस माला को उन्हें प्रदान कर दिया ॥५॥ हे मैत्रेय ! उस माला को लेकर उन्मत्त रूपधारी ब्राह्मण श्रेष्ठ दुर्वासा महर्षि ने उसे अपने शिर पर रख लिया और वे पृथिवी पर विचरण करने लगे ॥६॥ उसी समय उन्होंने उन्मत्त ऐरावत हाथी पर चढ़कर त्रैलोक्याधिपति इन्द्र को देवताओं के साथ आते हुए देखा ॥७॥ इन्द्र को देखकर उन्मत्त के समान महर्षि दुर्वासा ने उन्मत्त भ्रमरों से युक्त उस माला को अपने शिर से उतार कर उनके ऊपर फेंक दिया ॥८॥ देवराज इन्द्र ने उस माला को लेकर ऐरावत के शिर पर रख दिया, उस समय ऐरावत हाथी की ऐसी शोभा हुयी जैसे कैलास पर्वत के शिखर पर गङ्गाजी विराज रही हो ॥९॥ मदमत्त हाथी ने माला की गन्ध से आकृष्ट होकर अपनी सूड़ से उसे सूंघकर पृथिवी पर फेंक दिया ॥१०॥ हे मैत्रेय ! उसे देखकर महर्षि दुर्वासा अत्यन्त क्रुद्ध हो गये और क्रोधित होकर उन्होंने देवराज इन्द्र से यह कहा ॥११॥ **महर्षि दुर्वासा ने कहा—** ऐ ऐश्वर्य के मद से दुषित चित्त वाले इन्द्र ! तुम अत्यन्त स्तब्ध (ढीठ) हो, सम्पूर्ण शोभाओं के आश्रय स्वरूप मेरे द्वारा दी गयी माला का तुमने आदर नहीं किया ॥१२॥ तुमने न तो साष्टाङ्ग प्रणाम करके यह ही कहा कि 'आपने बड़ी कृपा की'; और न तो प्रसन्नता पूर्वक इस माला को अपने शिर पर ही धारण किया ॥१३॥ अरे मूर्ख ! तुमने चूकि मेरे द्वारा दी गयी माला का सम्मान नहीं किया है; अतएव तुम्हारा त्रैलोक्य का ऐश्वर्य विनष्ट हो जायेगा ॥१४॥ इन्द्र तुम मुझे दूसरे ब्राह्मणों के समान मानते हो; अतएव तुम घमण्डी हो और मेरा अपमान किए हो ॥१५॥ चूकि तुमने मेरे द्वारा प्रदत्त माला को पृथिवी पर फेंक दिया है। अतएव शीघ्र ही तुम्हारा त्रैलोक्य श्रीहीन हो जायेगा ॥१६॥ देवराज ! जिसके क्रुद्ध हो जाने पर चराचर काँपने लग जाता है, उसका तुमने अत्यन्त गर्व के कारण अपमान किया है ॥१७॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** इन्द्र शीघ्रता पूर्वक हाथी के कन्धे पर से उतरे और निष्पाप मुनि दुर्वासा महर्षि को प्रार्थना आदि से प्रसन्न कर लिए ॥१८॥ उसके बाद साष्टाङ्ग प्रणिपात पुरस्सर प्रार्थनादि से प्रसन्न होकर महर्षि दुर्वासा

प्रसाद्यमानः स तदा प्रणिपातपुरः सरम्। इत्युवाच सहस्राक्षं दुर्वासा मुनिसत्तमः ॥१९॥

दुर्वासा उवाच

नाहं कृपालुहृदयो न च मां भजते क्षमा। अन्ये ते मुनयः शक्रः दर्वाससमवेहि माम्॥२०॥

गौतमादिभिरन्यैस्त्वं गर्वमारोपितो मुधा। अक्षान्तिसारसर्वस्वं दुवाससमवेहि माम् ॥२१॥

वसिष्ठाद्यैर्दयासारैस्स्तोत्रं कुर्वद्भिरुच्चकैः। गर्वं गतोऽसि येनैवं मामप्यद्यावमन्यसे ॥२२॥

ज्वलज्जटाकलापस्य भृकुटीकुटिलं मुखम्। निरीक्ष्य कस्त्रिभुवने मम यो न गतो भयम् ॥२३॥

नाहं क्षमिष्ये बहुना किमुक्तेन शतक्रतो। विडम्बनामिमां भूयः करोष्यनुनयात्मिकाम्॥२४॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्त्वा प्रययौ विप्रो देवराजोऽपि तं पुनः। आरुह्यैरावतं ब्रह्मन् प्रययावमरावतीम्॥२५॥

ततः प्रभृति निःश्रीकं सशक्रं भुवनत्रयम्। मैत्रेयासीदपध्वस्तं संक्षीणौषधिवीरुधम्॥२६॥

न यज्ञाः समवर्त्तन्त न तपस्यन्ति तापसाः। न च दानादिधर्मेषु मनश्चक्रे तदा जनः॥२७॥

निः सत्त्वाः सकला लोका लोभाद्युपहतेन्द्रियाः। स्वल्पेऽपि हि बभूवुस्ते साभिलाषा द्विजोत्तम॥२८॥

यत सत्त्वं ततो लक्ष्मीः सत्त्वं भूत्यनुसारि च। निःश्रीकाणां कुतः सत्त्वं विना तेन गुणाः कुतः ॥२९॥

बलशौर्याद्यभावश्च पुरुषाणां गुणैर्विना। लंघनीयः समस्तस्य बलशौर्यविवर्जितः ॥३०॥

भवत्यपध्वस्तमतिर्लङ्घितः प्रथितः पुमान् ॥३१॥

एवमत्यन्तनिः श्रीके त्रैलोक्ये सत्त्ववर्जिते। देवान् प्रति बलोद्योगं चक्रुर्दैतेयदानवाः॥३२॥

लोभाभिभूता निःश्रीका दैत्याः सत्त्वविवर्जिताः। श्रिया विहीनैर्निःसत्त्वैर्देवैश्चक्रुस्ततो रणम् ॥३३॥

ने इन्द्र से कहा ॥१९॥ **दुर्वासा महर्षि ने कहा**— इन्द्र ! मैं दयालु हृदय वाला नही हूँ, मेरे अन्तःकरण में क्षमा का कोई भी स्थान नहीं है। ऐसा करने वाले वे मुनिजन दूसरे होंगे; मुझे दुर्वासा जानो ॥२०॥ गौतमादि मुनियों ने तुझे व्यर्थ ही गर्वीला बना दिया है, क्षमा राहित्य ही मेरा सार सर्वस्व है, मेरा नाम दुर्वासा है ॥२१॥ वसिष्ठ आदि दयालु महर्षियों ने तुम्हारी अत्यधिक स्तुति की इसीलिए तुम गर्वीले हो गये हो और आज मेरा अपमान कर रहे हो॥२२॥ आज त्रैलोकी में ऐसा कौन है ? जो मेरा जटासमूह तथा टेढ़ी भृकुटि को देखकर भयभीत न हो जाय॥२३॥ इन्द्र बहुत कहने से क्या लाभ है ? मैं क्षमा नहीं करूँगा तुम तो यह अनुनय आदि रूप से बहुत अधिक मेरा अपमान कर रहे हो ॥२४॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा**— हे ब्रह्मन् ! इस तरह से कहकर विप्र महर्षि दुर्वासा चले गये और देवराज इन्द्र भी हाथी पर आरूढ होकर अमरावती चले गये ॥२५॥ हे मैत्रेय ! उसी समय से इन्द्र तथा त्रैलोक्य श्रीहीन हो गये, वृक्ष लता आदि विनष्ट होकर नष्ट भ्रष्ट होने लग गये ॥२६॥ कोई यज्ञ नहीं करता था, तपस्वी तपस्या नहीं करते थे, लोगों को दान तथा धर्म आदि करने का मन नहीं होता था ॥२७॥ हे द्विजोत्तम ! सभी लोग लोभ आदि के वशीभूत होने के कारण निःसत्त्व हो गये। श्रेष्ठ ब्राह्मण भी छोटी से छोटी वस्तु के लिए लालायित रहने लगे ॥२८॥ जहाँ सत्त्व होता है वहीं लक्ष्मी रहती हैं। सत्त्व भी ऐश्वर्य के साथ ही रहता है। जो निःश्रीक है उसमें सत्त्व कहाँ से रहेगा ? सत्त्व के बिना कोई गुण भी नहीं हो सकता है ॥२९॥ गुणों के बिना पुरुष में बल एवं शौर्य (वीरता) का अभाव हो जाता है; बल एवं शौर्य से रहित व्यक्ति का सब लोग अपमान करते हैं ॥३०॥ अपमानित होने पर प्रतिष्ठित व्यक्ति की बुद्धि विनष्ट हो जाती है ॥३१॥ इस तरह से त्रैलोक्य के अत्यन्त निःश्रीक हो जाने पर दैत्यों और दानवों ने देवताओं पर आक्रमण कर दिया ॥३२॥ सत्त्व एवं

विजितास्त्रिदशा दैत्यैरिन्द्राद्याः शरणं ययुः । पितामहं महाभागं हुताशनपुरोगमाः ॥३४॥
यथावत्कथितो दैवैर्ब्रह्मा प्राह ततः सुरान् । परावरेशं शरणं व्रजध्वमसुरार्दनम् ॥३५॥
उत्पत्तिस्थितिनाशानामहेतुं हेतुमीश्वरम् । प्रजापतिपतिं विष्णुमनन्तमपराजितम् ॥३६॥
प्रधानपुंसोरजयोः कारणं कार्यभूतयोः । प्रणतार्त्तिहरं विष्णुं स वः श्रेयो विधास्यति ॥३७॥

श्रीपराशर उवाच

एवमुक्त्वा सुरान्सर्वान् ब्रह्मा लोकपितामहः । क्षीरोदस्योत्तरं तीरं तैरेव सहितो ययौ॥३८॥
स गत्वा त्रिदशैः सर्वैः समवेतः पितामहः । तुष्टाव वाग्भिरिष्टाभिः परावरपतिं हरिम् ॥३९॥

ब्रह्मोवाच

नमामि सर्वं सर्वेशमनन्तमजमव्ययम् । लोकधाम धराधारमप्रकाशमभेदिनम् ॥४०॥
नारायणमणीयांसमशेषाणामणीयसाम् । समस्तानां गरिष्ठं च भूरादीनां गरीयसाम् ॥४१॥
यत्र सर्वं यतः सर्वमुत्पन्नं मत्पुरः सरम् । सर्वभूतश्च यो देवः पराणामपि यः परः ॥४२॥
परः परस्मात्पुरुषात्परमात्मस्वरूपधृक् । योगिभिश्चिन्त्यते योऽसौ मुक्तिहेतोर्मुमुक्षुभिः ॥४३॥
सत्त्वादयो न सन्तीशे यत्र च प्राकृता गुणाः । स शुद्धः सर्वशुद्धेभ्यः पुमानाद्यः प्रसीदतु॥४४॥
कलाकाष्ठामुहूर्त्तादिकालसूत्रस्य गोचरे । यस्य शक्तिर्न शुद्धस्य स नो विष्णुः प्रसीदतु ॥४५॥
प्रोच्यते परमेशो हि यः शुद्धोऽप्युपचारतः । प्रसीदतु स नो विष्णुरात्मा यः सर्वदेहिनाम् ॥४६॥

वैभव से विहीन होने पर भी लोभ के वशीभूत बने हुए दैत्य श्रीविहीन तथा निःश्रीक देवताओं के साथ युद्ध करते थे॥३३॥ दैत्यों से पराजित होकर इन्द्र आदि देवता अग्निदेव को आगे करके ब्रह्माजी के शरण में गये ॥३४॥ देवताओं का सारा वृत्तान्त सुनकर **ब्रह्माजी ने देवताओं से कहा—** तुमलोग, असुरों को विनष्ट करने वाले परावर तत्त्वों के स्वामी जगत् की उत्पत्ति, स्थिति तथा नाश के कारण स्वरूप, स्वयं कारण रहित (अनादि) सम्पूर्ण जगत् के नियामक, प्रजापतियों के आश्रय, अनन्त तथा किसी से पराजित नहीं होने वाले, अजन्मा तथा कार्य रूप में परिणत प्रधान (प्रकृति) तथा पुरुष के भी कारण स्वरूप शरणागत जीवों के कष्ट को दूर करने वाले, सर्वव्यापक भगवान् विष्णु के शरण में जाओ । वे ही तुम लोगों का कल्याण करेंगे ॥३५-३७॥ **महर्षि पराशर ने कहा—** इस तरह से देवताओं से कहकर लोकपितामह ब्रह्मा उन देवताओं के ही साथ क्षीरसागर के उत्तर तट पर गये ॥३८॥ वहाँ जाकर सभी देवताओं के साथ ब्रह्माजी अत्यन्त मङ्गलमय स्तुतियों से परावर तत्त्वों के स्वामी श्रीहरि की स्तुति किए।॥३९॥ **ब्रह्माजी ने कहा—** मैं सर्वस्वरूप, सबों के स्वामी, अनन्त, अज (अजन्मा) अव्यय (विकार रहित) सम्पूर्ण लोकों के आश्रय, पृथिवी के आधार, अनभिव्यक्त स्वरूप वाले, भेद रहित सम्पूर्ण सूक्ष्म पदार्थों से भी सूक्ष्म तथा पृथिवी आदि भारी पदार्थों से भी भारी भगवान् नारायण को मैं नमस्कार करता हूँ ॥४०-४१॥ मेरे सहित सम्पूर्ण जगत् जिनमें स्थित है, जिनसे सम्पूर्ण जगत् उत्पन्न होता है; जो श्रीभगवान् सर्वस्वरूप है, जो सभी परों से भी परतत्त्व है, (अर्थात् स्वेतर समस्त तत्त्वों से श्रेष्ठ हैं) जो परम पुरुष (मुक्त जीव) से भी श्रेष्ठ हैं, जो परमात्म स्वरूप हैं, मुमुक्षु योगिजन जिनका मुक्ति प्राप्त करने के लिए ध्यान करते हैं । जिन सम्पूर्ण जगत् के नियन्ता पुरुष में प्राकृतिक सत्त्वादि गुण नहीं हैं, जो सभी शुद्धों से भी बढ़कर शुद्ध हैं वे भगवान् विष्णु प्रसन्न हों ॥४२-४४॥ जिन शुद्ध श्रीभगवान् की शक्ति कला, काष्ठा, मुहूर्त आदि काल सूत्र का विषय नहीं बनती है, वे भगवान् विष्णु हमपर प्रसन्न हों ॥४५॥ जो भगवान् विष्णु शुद्ध होकर भी परमेश (लक्ष्मीपति) कहे जाते हैं तथा जो सभी शरीरधारियों की

यः कारणं च कार्यं च कारणस्यापि कारणम्। कार्यस्यापि च यः कार्यं प्रसीदतु स नो हरिः ॥४७॥
कार्यकार्यस्य यत्कार्यं तत्कार्यस्यापि यः स्वयम्। तत्कार्यकार्यभूतो यस्ततश्च प्रणताः स्म तम् ॥४८॥
कारणं कारणस्यापि तस्य कारणकारणम्। तत्कारणानां हेतु तं प्रणताः स्म परमेश्वरम् ॥४९॥
भोक्तारं भोग्यभूतं च स्त्रष्टारं सृज्यमेव च। कार्यकर्तृस्वरूपं तं प्रणताः स्म परं पदम्॥५०॥
विशुद्धबोधवन्नित्यमजमक्षयमव्ययम् । अव्यक्तमविकारं यत्तद्विष्णोः परमं पदम्॥५१॥
न स्थूलं न च सूक्ष्मं यन्न विशेषणगोचरम्। तत्पदं परमं विष्णोः प्रणमामः सदाऽमलम् ॥५२॥
यस्यायुतायुतांशांशे विश्वशक्तिरियं स्थिता। परब्रह्मस्वरूपं यत्प्रणमामस्तमव्ययम् ॥५३॥
यद्योगिनः सदोद्युक्ताः पुण्यपापक्षयेऽक्षयम्। पश्यन्ति प्रणवे चिन्त्यं तद्विष्णोः परमं पदम्॥५४॥
यन्न देवा न मुनयो न चाहं न च शङ्करः। जानन्ति परमेशस्य तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५५॥
शक्तयो यस्य देवस्य ब्रह्मविष्णुशिवात्मिकाः। भवन्त्यभूतपूर्वस्य तद्विष्णोः परमं पदम् ॥५६॥
सर्वेश सर्वभूतात्मन्सर्व सर्वाश्रयाच्युत। प्रसीद विष्णो भक्तानां व्रज नो दृष्टिगोचरम्॥५७॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युदीरितमाकर्ण्य ब्रह्मणस्त्रिदशास्ततः। प्रणम्योचुः प्रसीदेति व्रज नो दृष्टिगोचरम्॥५८॥

आत्मा हैं, वे भगवान् विष्णु हमपर प्रसन्न हों ॥४६॥ जो कारण (प्रकृति) कार्य (महान्) कारणभूता प्रकृति के भी कारण, तथा कार्यभूत महत् तत्त्व के भी कार्य अहङ्कार स्वरूप हैं, वे भगवान् विष्णु हम पर प्रसन्न हों ॥४७॥ कार्यभूत महत् तत्त्व के भी कार्य अहङ्कार के भी कार्य (पञ्च तन्मात्रायें) तथा उसके भी कार्य पञ्च महाभूत, उसके भी कार्य ब्रह्माण्ड के भी कार्य चतुर्मुख ब्रह्मा तथा उनके भी कार्य जगत् स्वरूप वे स्वयं हैं उन भगवान् विष्णु को हम प्रणाम करते हैं ॥४८॥ जो भगवान् विष्णु जगत् के कारण ब्रह्माजी के कारण ब्रह्माण्ड के भी कारण पञ्च महाभूतों के भी कारण पञ्च तन्मात्रायें, तथा पञ्च तन्मात्राओं के भी कारण अहङ्कार आदि के कारण स्वरूप हैं उन (कारणावस्थ तथा कार्यावस्थ) परमेश्वर भगवान् विष्णु को हम प्रणाम करते हैं ॥४९॥ हम उन परम प्राप्य भगवान् विष्णु को प्रणाम करते हैं जो भोक्ता (जीव), भोज्य (प्रकृति तथा प्राकृत पदार्थ) सृष्टि करने वाले, तथा सृज्य (जिनकी सृष्टि होती है) हैं, तथा कार्य स्वरूप एवं कर्त्ता स्वरूप हैं ॥५०॥ जो विशुद्ध (प्राकृत गुणों से रहित) ज्ञान स्वरूप, नित्य, अज, अक्षय निर्विकार, अव्यक्त तथा सदा एक समान रहने वाला है वही भगवान् विष्णु का परमपद है ॥५१॥ जो न स्थूल हैं न सूक्ष्म हैं; जो किसी भी विशेषण के विषय नहीं बनते हैं, जो अखिल हेय प्रत्यनीक होने के कारण सदा निर्मल ही रहते है वही भगवान् विष्णु का परमपद (पर वासुदेव स्वरूप रूप) है उसको हम प्रणाम करते हैं ॥५२॥ जिनके ऐश्वर्य के अयुतायुतांश (अत्यन्त सूक्ष्म अंश में) यह सम्पूर्ण विश्व व्यवस्थित (स्थित) है, जो श्रीभगवान् परब्रह्म स्वरूप हैं उन सदा एक रूप रहने वाले श्रीभगवान् को हम प्रणाम करते हैं ॥५३॥ नित्य युक्त योगिगण अपने पुण्य पाप रूप समस्त कर्मों का नाश हो जाने पर अक्षय ओंकार में चिन्तनीय (ध्यान करने योग्य) जिस अविनाशी पद का साक्षात्कार करते हैं, वही भगवान् विष्णु का परमपद है ॥५४॥ जिसको न तो देवगण, न मुनिगण, न मैं और न तो शङ्करजी जान पाते हैं, वही परमेश्वर भगवान् विष्णु का परम पद है ॥५५॥ जिन अभूतपूर्व दिव्य गुण सम्पन्न भगवान् विष्णु की शक्तियाँ ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव स्वरूपिणी हैं, वही भगवान् विष्णु का प्रख्यात परमद (परम प्राप्य पर वासुदेव रूप) हैं ॥५६॥ हे सबों के स्वामिन् ! समस्त भूतों के आत्मा स्वरूप ! सर्व स्वरूप ! सबों के आश्रय स्वरूप, अच्युत ! भगवन् विष्णो ! आप हम भक्तों पर प्रसन्न होकर हमें दर्शन दीजिए ॥५७॥ **श्रीपराशर महर्षि ने**

यन्नायं भगवान् ब्रह्मा जानाति परमं पदम्। तन्नताः स्म जगद्धाम तव सर्वगताच्युत ॥५९॥
इत्यन्ते वचसस्तेषां देवानां ब्रह्मणस्तथा। ऊचुर्देवर्षयस्सर्वे बृहस्पतिपुरोगमाः ॥६०॥
आद्यो यज्ञपुमानीड्यः पूर्वेषां यश्च पूर्वजः। तन्नताः स्म जगत्स्रष्टुः स्रष्टारमविशेषणम् ॥६१॥
भगवन्भूतभव्येश यज्ञमूर्त्तिधराव्यय। प्रसीद प्रणतानां त्वं सर्वेषां देहि दर्शनम् ॥६२॥
एष ब्रह्मा सहास्माभिः सहरुद्रैस्त्रिलोचनः। सर्वादित्यैः समं पूषा पावकोऽयं सहाग्निभिः ॥६३॥
अश्विनौ वसवश्चेमे सर्वे चैते मरुद्गणाः। साध्या विश्वे तथा देवा देवेन्द्रश्चायमीश्वरः ॥६४॥
प्रणामप्रवणा नाथ दैत्यसैन्यैः पराजिताः। शरणं त्वामनुप्राप्ताः समस्ता देवतागणाः ॥६५॥

श्रीपराशर उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु भगवाञ्छङ्खचक्रधृक्। जगाम दर्शनं तेषां मैत्रेय परमेश्वरः ॥६६॥
तं दृष्ट्वा ते तदा देवाः शङ्खचक्रगदाधरम्। अपूर्वरूपसंस्थानं तेजसां राशिमूर्जितम् ॥६७॥
प्रणम्य प्रणताः सर्वे संक्षोभस्तिमितेक्षणाः। तुष्टुवुः पुण्डरीकाक्षं पितामहपुरोगमाः ॥६८॥

देवा ऊचुः

नमो नमोऽविशेषस्त्वं त्वं ब्रह्मा त्वं पिनाकधृक्। इन्द्रस्त्वमग्निः पवनो वरुणः सविता यमः ॥६९॥
वसवो मरुतः साध्या विश्वेदेवगणाः भवान्। योऽयं तवाग्रतो देव समीपं देवतागणः।
स त्वमेव जगत्स्रष्टा यतः सर्वगतो भवान् ॥७०॥

कहा— इस तरह से ब्रह्माजी के द्वारा की गयी स्तुति को सुनकर सभी देवताओं ने प्रणाम करके कहा— हे भगवन्! आप प्रसन्न होइये और हमलोगों को दर्शन दीजिये ॥५८॥ हे सर्व व्यापक भगवन् अच्युत ! जिसे ये भगवान् ब्रह्माजी भी नहीं जानते है, वे जगत् के आश्रय स्वरूप ! हम सभी आपके उसी परमपद को प्रणाम करते हैं ॥५९॥ इस प्रकार से ब्रह्माजी तथा देवताओं के कह लेने के पश्चात् आचार्य बृहस्पति को आगे करके सभी देवर्षियों ने कहा॥६०॥ जो यज्ञ पुरुष तथा पूजनीय एवं स्तवनीय हैं, जो पूर्वजों के भी पूर्वज हैं, जो जगत् की सृष्टि करने वाले ब्रह्माजी के भी स्रष्टा हैं; जो समस्त विशेषणों से रहित हैं, उन श्रीभगवान् को हम नमस्कार करते हैं ॥६१॥ हे भूतभव्येश ! यज्ञमूर्ति (यज्ञ शरीर) को धारण करने वाले, अव्यय भगवन् ! आप हम शरणागतों पर प्रसन्न होइये और हमें दर्शन दीजिये ॥६२॥ हे नाथ ! हमलोगों के साथ ये ब्रह्माजी, रुद्रों के साथ भगवान् शङ्कर, समस्त आदित्यों के साथ पूषा (सूर्य), अग्नियों के साथ पावक, दोनों अश्विनी कुमार, वसुगण, सभी देवगण, साध्यगण, विश्वेदेव तथा देवराज इन्द्र हम सभी आपको प्रणाम करते हैं, हम सभी दैत्यों की सेना से पराजित हो गये हैं, अतएव समस्त देवगण आपके शरण में आये हैं ॥६३-६५॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हे मैत्रेय ! इस तरह से स्तुति किए जाने पर, शंख, चक्र धारण करने वाले, परमेश्वर भगवान् विष्णु ने उन सबों को दर्शन दिया ॥६६॥ उस समय, अपूर्व रूप तथा अवयवों वाले, तेजों की उत्कृष्ट राशि स्वरूप, शंख, चक्र तथा गदा धारण किए हुए श्रीभगवान् को देखकर, ब्रह्मा आदि समस्त देवतागण अत्यन्त नम्रता पूर्वक प्रणाम करके क्षोभ वशात् चकित नेत्रों वाले होकर भगवान् पुण्डरीकाक्ष की स्तुति करने लगे ॥६८॥ **देवताओं ने कहा—** हे भगवन् ! आप समस्त विशेषों से रहित हैं, आप ही ब्रह्मा, शङ्कर, इन्द्र अग्नि, वायु, वरुण, सविता, यम, वसुगण, मरुद्गण, साध्यदेव तथा विश्वेदेवगण हैं । आपके सन्निकट में यह जो देव समूह है, वह आप ही हैं; क्योंकि आप ही जगत् की सृष्टि करने वाले और सर्व व्यापक हैं॥६९-७०॥ आप ही यज्ञ स्वरूप, वषट्कार, ओङ्कार, प्रजापति, विद्या स्वरूप तथा वेद्य स्वरूप हैं । हे सर्वात्मन्!

त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः प्रजापतिः । विद्या वेद्यं च सर्वात्मंस्त्वन्मयं चाखिलं जगत् ॥७१॥
त्वामार्त्ताः शरणं विष्णो प्रयाता दैत्यनिर्जिताः । वयं प्रसीद सर्वात्मंस्तेजसाप्यायस्व नः ॥७२॥
तावदार्त्तिस्तथा वाञ्छा तावन्मोहस्तथाऽसुखम् । यावन्न याति शरणं त्वामशेषाघनाशनम् ॥७३॥
त्वं प्रसादं प्रसन्नात्मन् प्रपन्नानां कुरुष्व नः । तेजसां नाथ सर्वेषां स्वशक्त्याप्यायनं कुरु ॥७४॥

श्रीपराशर उवाच

एवं संस्तूयमानस्तु प्रणतैरमरैर्हरिः । प्रसन्नदृष्टिर्भगवानिदमाह स विश्वकृत् ॥७५॥
तेजसो भवतां देवाः करिष्याम्युपबृंहणम् । वदाम्यहं यत्क्रियतां भवद्भिस्तदिदं सुराः ॥७६॥
आनीय सहिता दैत्यैः क्षीराब्धौ सकलौषधीः । प्रक्षिप्यात्रामृतार्थं ताः सकला दैत्यदानवैः ।
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम् ॥७७॥
मथ्यतामममृतं देवाः सहाये मय्यवस्थिते ॥७८॥
सामपूर्वं च दैतेयास्तत्र साहाय्यकर्मणि । सामान्यफलभोक्तारो यूयं वाच्या भविष्यथ ॥७९॥
मथ्यमाने च तत्राब्धौ यत्समुत्पत्स्यतेऽमृतम् । तत्पानाद्बलिनो यूयममराश्च भविष्यथ ॥८०॥
तथा चाहं करिष्यामि ते यथा त्रिदशद्विषः । न प्राप्स्यन्त्यमृतं देवाः केवलं क्लेशभागिनः ॥८१॥

श्रीपराशर उवाच

इत्युक्ता देवदेवेन सर्व एव तदा सुराः । सन्धानमसुरैः कृत्वा यत्नवन्तोऽमृतेभवन् ॥८२॥
नानौषधीः समानीय देवदैतेयदानवाः । क्षिप्त्वा क्षीराब्धिपयसि शरदभ्रामलत्विषि ॥८३॥
मन्थानं मन्दरं कृत्वा नेत्रं कृत्वा च वासुकिम् । ततो मथितुमारब्धा मैत्रेय तरसाऽमृतम् ॥८४॥

यह सम्पूर्ण जगत् आपका ही स्वरूप है ॥७१॥ हे भगवन् विष्णो ! हम दैत्यों से परास्त होने के कारण आर्त हो गये हैं और आपकी शरणं में आये हैं । आप प्रसन्न होकर हमलोगों को अपने तेज से आप्यायित (सशक्त) बनाइये ॥७२॥ जीव में तब तक ही आर्ति (कष्ट) इच्छा, मोह तथा दुःखी रहते हैं जब तक कि, समस्त पापों को विनष्ट करने वाले आपके शरण में वह नहीं आते हैं ॥७३॥ हे निरन्तर प्रसन्न रहने वाले भगवन् ! आप हम शरणागतों पर प्रसन्न होइये आप तेजस्वियों के स्वामी हैं; अपनी शक्ति से हम सबों को आप आप्यायित कीजिये ॥७४॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** विनम्र देवताओं के द्वारा इस प्रकार से स्तुति किए जाने पर जगत् की सृष्टि करने वाले श्रीभगवान् प्रसन्न हो गये और देवताओं से कहे ॥७५॥ देवताओं मैं तेज के द्वारा आपलोगों को समृद्ध बनाऊँगा; मैं जो कह रहा हूँ आपलोग पहले उस कार्य को कीजिये ॥७६॥ आपलोग दैत्यों के साथ मिलकर अमृत मन्थन के लिए सभी औषधियों को लाकर क्षीर सागर में डालें, मन्दराचल को मथानी तथा वासुकी नाग को नेत्र (नेती) बनाकर मेरी सहायता से अमृत का मन्थन करें ॥७७-७८॥ आपलोग साम नीति के द्वारा दैत्यों से कहें कि इस काम में आपलोग भी सहायता करें और इसके फल में आपलोग समान मात्रा में फल के भागी होयेंगे ॥७९॥ समुद्र का मन्थन करने से जो अमृत निकलेगा, उसका पान करने से दैत्य तथा देवता दोनों बलशाली होयेंगे ॥८०॥ मैं ऐसा उपाय करूँगा जिससे दैत्यों को अमृत नहीं मिलेगा, उनके हिस्से में केवल परिश्रम करना ही मिलेगा ॥८१॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** देवताओं के भी आराध्य श्रीभगवान् द्वारा इस तरह से कहे जाने पर देवताओं ने दैत्यों से सन्धि कर ली और वे सब अमृत प्राप्ति के लिए प्रयासरत हो गये ॥८२॥ हे मैत्रेय ! देवता, दैत्य तथा दानव अनेक प्रकार की औषधियों को लाकर उसे शरत् कालीन मेघ के समान स्वच्छ कान्ति वाले क्षीर सागर के जल में डालकर, मन्दराचल को मथानी

विबुधाः सहिताः सर्वे यतः पुच्छं ततः कृताः । कृष्णेन वासुकेर्दैत्याः पूर्वकाये निवेशिताः ॥८५॥
ते तस्य मुखनिश्वासवह्नितापहतत्विषः । निस्तेजसोऽसुराः सर्वे बभूवुरमितौजसः ॥८६॥
तेनैव मुखनिश्वासवायुनास्तबलाहकैः । पुच्छप्रदेशे वर्षद्भिस्तदा चाप्यायिताः सुराः ॥८७॥
क्षीरोदमध्ये भगवान्कर्मरूपी स्वयं हरिः । मन्थनाद्रेरधिष्ठानं भ्रमतोऽभून्महामुने ॥८८॥
रूपेणान्येन देवानां मध्ये चक्रगदाधरः । चकर्ष नागराजानं दैत्यमध्येऽपरेण च ॥८९॥
उपर्याक्रान्तवाञ्छैलं बृहद्रूपेण केशवः । तथापरेण मैत्रेय यन्न दृष्टं सुरासुरैः ॥९०॥
तेजसा नागराजानं तथाप्यायितवान्हरिः । अन्येन तेजसा देवानुपबृंहितवान्प्रभुः ॥९१॥
मथ्यमाने ततस्तस्मिन्क्षीराब्धौ देवदानवैः । हविर्धामाऽभवत्पूर्वं सुरभिः सुरपूजिता ॥९२॥
जग्मुर्मुदं ततो देवा दानवाश्च महामुने । व्याक्षिप्तचेतसश्चैव बभूवुः स्तिमितेक्षणाः ॥९३॥
किमेतदिति सिद्धानां दिवि चिन्तयतां ततः । बभूव वारुणी देवी मदाघूर्णितलोचना ॥९४॥
कृतावर्तात्ततस्तस्मात्क्षीरोदाद्वासयञ्जगत् । गन्धेन पारिजातोऽभूद्देवस्त्रीनन्दनस्तरुः ॥९५॥
रूपौदार्यगुणोपेतस्तथा चाप्सरसां गणः । क्षीरोदधेः समुत्पन्नो मैत्रेय परमाद्भुतः ॥९६॥
ततः शीतांशुरभवज्जगृहे तं महेश्वरः । जगृहुश्च विषं नागाः क्षीरोदाब्धिसमुत्थितम् ॥९७॥
ततो धन्वन्तरिर्देवः श्वेताम्बरधरस्स्वयम् । बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतस्य समुत्थितः ॥९८॥
ततः स्वस्थमनस्कास्ते सर्वे दैतेयदानवाः । बभूवुर्मुदिताः सर्वे मैत्रेय मुनिभिः सह ॥९९॥

बनाकर और वासुकी को नेती बनाकर, वेगपूर्वक अमृत मन्थन का काम प्रारम्भ कर दिए ॥८३-८४॥ श्रीभगवान् ने वासुकी नाग की जिस ओर पूँछ थी उस ओर देवताओं को तथा वासुकी नाग के मुख की ओर दैत्यों को लगा दिया॥८५॥ महातेजस्वी वासुकी नाग के निःश्वास की अग्नि से झुलस कर दैत्य निस्तेज हो गये ॥८६॥ उस मुख के निःश्वास से प्रक्षिप्त होकर वासुकी नाग की पूँछ की ओर बरसते हुए बादलों से देवता गण शक्ति सम्पन्न हो गये॥८७॥ हे महामुने मैत्रेय ! भगवान् स्वयं कूर्म रूप धारण करके, घूमते हुए मन्दराचल के आधार बन गये॥८८॥ भगवान् अपने एक अन्य रूप से देवताओं में तथा दूसरे रूप से दैत्यों में मिलकर वासुकी नाग को खींचने लगे॥८९॥ हे मैत्रेय ! जिसे देवता और असुर देख नहीं पाते थे ऐसे अपने एक विशाल रूप से मन्दाचल पर्वत को दबाये रहे ॥९०॥ भगवान् श्रीहरि अपने तेज से वासुकी नाग के बल को बढ़ा रहे थे और अपने दूसरे तेज से देवताओं के बल को बढ़ाते थे ॥९१॥ देवताओं तथा दानवों के द्वारा क्षीरसागर के मथे जाने पर उस क्षीर सागर से हविष्य के आश्रय स्वरूपा तथा देवताओं से पूजित कामधेनु प्रकट हुयी ॥९२॥ हे महामुने ! उसे देखकर देवता और दैत्य प्रसन्न हो गये । सबों की दृष्टि कामधेनु की ओर ही खींच गयी और सब उसे निर्निमेष नेत्रों से देखने लगे॥९३॥ जिस समय आकाश में सिद्धगण, यह क्या है ? इस तरह से सोच ही रहे थे उसी समय मद से आधूर्णित (घूमते हुए) नेत्रों वाली वारुणी देवी क्षीरसागर से प्रकट हुयीं ॥९४॥ उसके पश्चात् मथे जाते हुए उस क्षीरसागर से अपनी सुगन्धि से संसार को सुगन्धित बनाते हुए देवताओं की स्त्रियों को अनान्दित करने वाला पारिजात वृक्ष उत्पन्न हुआ॥९५॥ हे मैत्रेय ! अपने रूप के औदार्य से सम्पन्न अप्सराओं का अद्भुत समुह, क्षीरसागर से निकला ॥९६॥ उसके पश्चात् चन्द्रमा निकला और उसको शङ्करजी ने ग्रहण कर लिया । क्षीरसागर से उत्पन्न हुए विष को नागों ने ग्रहण कर लिया ॥९७॥ उसके पश्चात् श्वेताम्बरधारी भगवान् धन्वन्तरि अमृत से भरे हुए कमण्डलु को लिए हुए प्रकट हुए ॥९८॥ हे मैत्रेय ! उस समय मुनियों के साथ सभी दैत्य तथा दानव-गण स्वस्थ मना होकर प्रसन्न हो

ततः स्फुरत्कान्तिमती विकासिकमले स्थिता। श्रीर्देवी पयसस्तस्मादुद्भूता धृतपङ्कजा ॥१००॥
तां तुष्टुवुर्मुदा युक्ताः श्रीसूक्तेन महर्षयः ॥१०१॥
विश्वावसुमुखास्तस्या गन्धर्वाः पुरतो जगुः । घृताचीप्रमुखास्तत्र ननृतुश्चाप्सरोगणाः ॥१०२॥
गङ्गाद्याः सरितस्तोयैः स्नानार्थमुपतस्थिरे। दिग्गजा हेमपात्रस्थमादाय विमलं जलम् ।
स्नापयाञ्चक्रिरे देवीं सर्वलोकमहेश्वरीम् ॥१०३॥
क्षीरोदो रूपधृक्तस्यै मालामम्लानपङ्कजाम्। ददौ विभूषणान्यङ्गे विश्वकर्मा चकार ह ॥१०४॥
दिव्यमाल्याम्बरधरा स्नाता भूषणभूषिता। पश्यतां सर्वदेवानां ययौ वक्षःस्थलं हरेः ॥१०५॥
तया विलोकिता देवा हरिवक्षःस्थलस्थया । लक्ष्म्या मैत्रेय सहसा परां निर्वृतिमागताः ॥१०६॥
उद्वेगं परमं जग्मुर्दैत्या विष्णुपराङ्मुखाः । त्यक्ता लक्ष्म्या महाभाग विप्रचित्तिपुरोगमाः ॥१०७॥
ततस्ते जगृहुर्दैत्या धन्वन्तरिकरस्थितम् । कमण्डलुं महावीर्या यत्रास्तेऽमृतमुत्तमम् ॥१०८॥
मायया मोहयित्वा तान्विष्णुः स्त्रीरूपसंस्थितः । दानवेभ्यस्तदादाय देवेभ्यः प्रददौ प्रभुः॥१०९॥
ततः पपुः सुरगणाः शक्राद्यास्तत्तदाऽमृतम्। उद्यतायुधनिस्त्रिंशा दैत्यास्तांश्च समभ्ययुः ॥११०॥
पीतेऽमृते च बलिभिर्देवैर्दैत्यचमूस्तदा । बध्यमाना दिशो भेजे पातालं च विवेश वै॥१११॥
ततो देवा मुदा युक्ताः शङ्खचक्रगदाभृतम्। प्रणिपत्य यथापूर्वमाशासत्तत्त्रिविष्टपम् ॥११२॥
ततः प्रसन्नभाः सूर्यः प्रययौ स्वेन वर्त्मना। ज्योतींषि च यथामार्गं प्रययुर्मुनिसत्तम ॥११३॥

गये॥९९॥ उसके पश्चात् विकसित कमल पर विराजमान अपनी कान्ति से देदीप्यमान श्रीदेवी अपने हाथ में कमल धारण किए हुयी क्षीरसागर के जल से प्रकट हुयीं ॥१००॥ प्रसन्न होकर महर्षियों ने श्रीसूक्त से श्रीदेवी की स्तुति की॥१०१॥ और विश्वावसु इत्यादि गन्धर्व गण गान करने लगे तथा घृताची इत्यादि अप्सरायें नृत्य करने लगीं॥१०२॥ गङ्गा आदि नदियाँ अपने जल से लोकमहेश्वरी श्रीदेवी को स्नान कराने के लिए उपस्थित हो गयीं और दिग्गजों ने सुवर्ण के घड़े से उन नदियों के स्वच्छ जल से श्रीदेवी को स्नान कराया ॥१०३॥ क्षीरसागर ने अपना मूर्तिमान रूप धारण करके उनको कभी भी नहीं कुम्हलाने वाली कमल पुष्पों की माला प्रदान की तथा विश्वकर्मा ने उनके अङ्गों में आभूषणों को धारण कराया ॥१०४॥ इस तरह स्नान करके दिव्य मालाओं तथा वस्त्रों को धारण की हुयी एवं आभूषणों से समलङ्कृत श्रीदेवी सभी देवताओं के सामने ही श्रीहरि के वक्षःस्थल में चली गयी ॥१०५॥ हे मैत्रेय ! श्रीहरि के वक्षःस्थल में विराजमान श्रीलक्ष्मीजी को देखकर देवताओं को अकस्मात् अत्यधिक प्रसन्नता हुयी ॥१०६॥ हे महाभाग ! लक्ष्मीजी के द्वारा परित्यक्त होकर विष्णु भगवान् के विरोधी विप्रचिति आदि दैत्यों को अत्यधिक उद्विग्नता (व्याकुलता) हुयी ॥१०७॥ उसके पश्चात् अत्यन्त बलवान् दैत्य धन्वन्तरि के हाथ में विद्यमान् तथा उत्तम अमृत से भरे हुए कमण्डलु को छीन लिया ॥१०८॥ उस समय अपनी माया से दैत्यों को मोहित करके स्त्री रूपधारी भगवान् विष्णु ने दैत्यों से अमृत को लेकर देवताओं को प्रदान कर दिया ॥१०९॥ उसके पश्चात् इन्द्र इत्यादि देवतागण उस अमृत को पीकर पुष्ट हो गये उसके कारण दैत्यगण तीक्ष्ण खड्ग आदि आयुधों को लेकर देवताओं पर टूट पड़े ॥११०॥ किन्तु अमृत पान करके बलवान् बने हुए देवताओं के द्वारा मारी गयी दैत्यों की सेना विभिन्न दिशाओं में भाग गयी और कुछ दैत्य पाताल लोक में चले गये ॥१११॥ उसके पश्चात् देवतागण शंख, चक्र तथा गदा धारण करने वाले भगवान् विष्णु को प्रणाम करके पहले की ही तरह स्वर्गलोक का प्रशासन करने लगे॥११२॥ हे मुनिश्रेष्ठ ! उस समय प्रखर तेज से युक्त होकर सूर्य अपने मार्ग से चलने लगे और अन्य तारागण भी अपने

जज्वाल भगवांश्चोच्चैश्चारुदीप्तिर्विभावसुः । धर्मे च सर्वभूतानां तदा मतिरजायत॥११४॥
त्रैलोक्यं च श्रिया जुष्टं बभूव द्विजसत्तम । शक्रश्च त्रिदशश्रेष्ठः पुनः श्रीमानजायत॥११५॥
सिंहासनगतः शक्रस्सम्प्राप्य त्रिदिवं पुनः। देवराज्ये स्थितो देवीं तुष्टावाब्जकरां ततः॥११६॥

इन्द्र उवाच

नमस्ये सर्वलोकानां जननीमब्जसम्भवाम्। श्रियमुन्निद्रपद्माक्षीं विष्णुवक्षःस्थलस्थिताम्॥११७॥
पद्मालयां पद्मकरां पद्मपत्रनिभेक्षणाम्। वन्दे पद्ममुखीं देवीं पद्मनाभप्रियामहम्॥११८॥
त्वं सिद्धिस्त्वं स्वधा स्वाहा सुधा त्वं लोकपावनी। सन्ध्या रात्रिः प्रभा भूतिर्मेधा श्रद्धा सरस्वती ॥११९॥
यज्ञविद्या महाविद्या गुह्यविद्या च शोभने। आत्मविद्या च देवि त्वं विमुक्तिफलदायिनी ॥१२०॥
आन्वीक्षिकी त्रयीवार्ता दण्डनीतिस्त्वमेव च। सौम्यासौम्यैर्जगद्रूपैस्त्वयैतद्देवि पूरितम्॥१२१॥
का त्वन्या त्वामृते देवि सर्वयज्ञमयं वपुः। अध्यास्ते देवदेवस्य योगिचिन्त्यं गदाभृतः॥१२२॥
त्वया देवि परित्यक्तं सकलं भुवनत्रयम्। विनष्टप्रायमभवत्त्वयेदानीं समेधितम्॥१२३॥
दाराः पुत्रास्तथागारसुहृद्धान्यधनादिकम्। भवत्येतन्महाभागे नित्यं त्वद्वीक्षणान्नृणाम् ॥१२४॥
शरीरारोग्यमैश्वर्यमरिपक्षक्षयः सुखम्। देवि त्वद्दृष्टिदृष्टानां पुरुषाणां न दुर्लभम् ॥१२५॥
त्वं माता सर्वलोकानां देवदेवो हरिः पिता। त्वयैतद्विष्णुना चाम्ब जगद्व्याप्तं चराचरम्॥१२६॥

अपने मार्ग से चलने लगे ॥११३॥ सुन्दर प्रकाश से युक्त भगवान् अग्नि जलने लगे उस समय सबों की बुद्धि धार्मिक हो गयी ॥११४॥ हे द्विजश्रेष्ठ ! त्रैलोक्य ऐश्वर्य सम्पन्न हो गया और देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्र फिर श्रीमान् हो गये ॥११५॥ इन्द्र स्वर्गलोक का राज्य पुनः प्राप्त कर लिए और सिंहासनारूढ इन्द्र ने कमल धारण करने वाली लक्ष्मीजी की स्तुति की ॥११६॥ **इन्द्र ने कहा—** सम्पूर्ण लोकों की माता, कमलवन से उत्पन्न होने वाली विकसित कमल के समान नेत्रों वाली तथा भगवान् विष्णु के वक्षःस्थल में निवास करने वाली, श्रीदेवी को मैं नमस्कार करता हूँ ॥११७॥ कमल में निवास करने वाली, अपने हाथ में कमल धारण करने वाली कमलदल के समान सुन्दर नेत्रों वाली, कमल के समान सुन्दर मुख वाली, तथा भगवान् पद्मनाभ की प्रियतमा श्रीदेवी की मैं वन्दना करता हूँ॥११८॥ हे देवि ! आप ही सिद्धि है, स्वधा तथा स्वाहा भी आप ही हैं, आप ही सुधा हैं और त्रैलोक्य को पवित्र करने वाली हैं । आप ही सन्ध्या, रात्रि, प्रभा, भूति, मेधा, श्रद्धा तथा सरस्वती स्वरूप हैं ॥११९॥ हे शोभने ! आप ही यज्ञविद्या, महाविद्या, गुह्यविद्या (इन्द्रजाल) तथा आत्मविद्या हैं । हे देवि ! आप ही मोक्षरूपी फल को प्रदान करने वाली हैं ॥१२०॥ हे देवि आप ही, अन्विक्षिकी (तर्कविद्या) त्रयी, वार्ता (शिल्प तथा वाणिज्य आदि) और दण्डनीति हैं । हे देवि ! आपके ही सौम्य (शान्त) तथा असौम्य (उग्र) रूपों से यह सम्पूर्ण जगत् परिपूर्ण है॥१२१॥ हे देवि ! आपको छोड़कर ऐसी कौन दूसरी स्त्री है जो, देवदेव (देवताओं के आराध्य) तथा योगिजन जिसका चिन्तन (ध्यान) किया करते है, गदाधारी उन भगवान् विष्णु के सम्पूर्ण यज्ञमय शरीर को अपना आश्रय बना सके ॥१२२॥ हे देवि ! आपके द्वारा परित्यक्त होकर यह सम्पूर्ण त्रैलोक्य विनष्ट सा हो गया था, किन्तु इस समय आपने ही इसे समृद्ध बना दिया ॥१२३॥ हे देवि ! आपकी ही कृपा दृष्टि से मनुष्यों को पत्नी, पुत्र, गृह, मित्र, धन-धान्य आदि ये सारी वस्तुएँ प्राप्त हो जाती हैं ॥१२४॥ हे देवि ! आपके द्वारा कृपादृष्टि से देखे गये पुरुषों के लिए शरीर का आरोग्य, ऐश्वर्य और शत्रुओं के पक्ष का नाश ये सब दुर्लभ नहीं रह जाते हैं ॥१२५॥ आप ही सम्पूर्ण लोकों की माता हैं तथा देवताओं के श्रीहरि पिता हैं । हे माँ ! तुम्हारे तथा भगवान् विष्णु के द्वारा यह सम्पूर्ण जगत् व्याप्त है॥१२६॥

मा नः कोशं तथा गोष्ठं मा गृहं मा परिच्छदम्। मा शरीरं कलत्रं च त्यजेथाः सर्वपावनि ॥१२७॥
मा पुत्रान्मा सुहृद्वर्गं मा पशून्मा विभूषणम्। त्यजेथा मम देवस्य विष्णोर्वक्षः स्थलालये॥१२८॥
सत्त्वेन सत्यशौचाभ्यां तथा शीलादिभिर्गुणैः। त्यज्यन्ते ते नराः सद्यः सन्त्यक्ता ये त्वयामले ॥१२९॥
त्वया विलोकिताः सद्यः शीलाद्यैरखिलैर्गुणैः। कुलैश्वर्यैश्च युज्यन्ते पुरुषा निर्गुणा अपि ॥१३०॥
स श्लाघ्यः स गुणी धन्यः स कुलीनः स बुद्धिमान्। स शूरः स च विक्रान्तो यस्त्वया देवि वीक्षितः ॥१३१॥
सद्यो वैगुण्यमायान्ति शीलाद्याः सकला गुणाः। पराङ्मुखी जगद्धात्री यस्य त्वं विष्णुवल्लभे॥१३२॥
न ते वर्णयितुं शक्ता गुणाञ्जिह्वापि वेधसः। प्रसीद देवि पद्माक्षि मास्मांस्त्याक्षीः कदाचन॥१३३॥

श्रीपराशर उवाच

एवं श्रीः संस्तुता सम्यक् प्राह देवी शतक्रतुम्। शृण्वतां सर्वदेवानां सर्वभूतस्थिता द्विज॥१३४॥

श्रीरुवाच

परितुष्टास्मि देवेश स्तोत्रेणानेन ते हरे। वरं वृणीष्व यस्त्विष्टो वरदाहं तवागता॥१३५॥

इन्द्र उवाच

वरदा यदि मे देवि वरार्हो यदि वाप्यहम्। त्रैलोक्यं न त्वया त्याज्यमेष मेऽस्तु वरः परः ॥१३६॥
स्तोत्रेण यस्तथैतेन त्वां स्तोष्यत्यब्धिसमभवे। स त्वया न परित्याज्यो द्वितीयोऽस्तु वरो मम ॥१३७॥

श्रीरुवाच

त्रैलोक्यं त्रिदशश्रेष्ठ न सन्त्यक्ष्यामि वासव। दत्तो वरो मया यस्ते स्तोत्राराधनतुष्टया॥१३८॥

हे सम्पूर्ण जगत् को पवित्र बना देने वाली माँ ! आप कभी भी हमारे कोष, (खजाने) गोष्ठ (पशुशाला) गृह, परिच्छद (भोगसामग्री) शरीर तथा पत्नी आदि का परित्याग न करें ॥१२७॥ हे देवाराध्य भगवान् विष्णु के वक्षः स्थल में निवास करने वाली मातः ! आप मेरे पुत्रों, मित्र समूहों, पशुओं तथा अलङ्कारों का कभी परित्याग न करें ॥१२७॥ हे अमले ! (सभी दोषों से रहित) मातः जिन मनुष्यों का आप परित्याग कर देती हैं, वे मनुष्य शीघ्र ही सत्त्वगुण (या बल) सत्य, शौच (पावित्र्य पालन) तथा शील आदि गुणों से रहित हो जाते हैं ॥१२९॥ आप जिन मनुष्यों पर अपनी कृपा दृष्टि करती हैं, वे निर्गुण (गुणहीन) भी पुरुष शील आदि समस्त सद्गुणों तथा सद्वंश तथा ऐश्वर्यों से सम्पन्न हो जाते हैं ॥१३०॥ हे देवि ! वही मनुष्य प्रशंसनीय, गुणवान्, धन्य, कुलीन, बुद्धिमान्, शूरवीर तथा पराक्रम सम्पन्न होता है जिस पर आपकी कृपा दृष्टि पड़ जाती है ॥१३१॥ हे जगत् की माता ! भगवान् विष्णु की प्रियतमे ! आप जिस जीव से पराङ्मुख (विमुख) हो जाती हैं, उस मनुष्य के सभी शील आदि गुण अवगुण (दोष) में बदल जाते हैं ॥१३२॥ हे देवि ! आपके समस्त गुणों का वर्णन ब्रह्माजी भी नहीं कर सकते है; हे कमल के समान नेत्रों वाली देवि ! आप प्रसन्न होइये । आप हमलोगों का कभी भी परित्याग न करें ॥१३३॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हे द्विज ! इस प्रकार से अच्छी तरह स्तुति किए जाने पर, सभी भूतों में निवास करने वाली, श्रीलक्ष्मीजी ने सभी देवताओं के सुनते रहने पर ही इन्द्र से कहा ॥१३४॥ **श्रीलक्ष्मीजी ने कहा—** हे इन्द्र! हे देवेश ! तुम्हारी इस स्तुति से मैं पूर्ण रूप से सन्तुष्ट हूँ । तुम अपना अभिप्रेत वरदान को माँग लो॥१३५॥ **इन्द्र ने कहा—** हे देवि ! यदि आप मुझे वरदान देना चाहती हैं, और यदि मैं वर के योग्य हूँ; तो मैं आपसे यह वरदान माँगता हूँ कि आप कभी भी त्रैलोक्य का परित्याग न करें ॥१३६॥ और हे समुद्र पुत्रि ! इस स्तोत्र के द्वारा जो अपकी स्तुति करे, उसका आप परित्याग न करें, यह मेरा दूसरा वर है ॥१३७॥ **श्रीदेवि ने कहा—** हे देवताओं में श्रेष्ठ इन्द्र! तुम्हारी स्तुति से प्रसन्न होकर मैं यह वरदान देती हूँ कि मैं कभी भी त्रैलोक्य का परित्याग नहीं करूँगी ॥१३८॥

यश्च सायं तथा प्रातः स्तोत्रेणानेन मानवः । मां स्तोष्यति न तस्याहं भविष्यामि पराङ्मुखी ॥१३९॥

श्रीपराशर उवाच

एवं ददौ वरं देवी देवराजाय वै पुरा। मैत्रेय श्रीर्महाभागा स्तोत्राराधनतोषिता॥१४०॥
भृगोः ख्यात्यां समुत्पन्ना श्रीः पूर्वमुदधेः पुनः। देवदानवयत्नेन प्रसूताऽमृतमन्थने ॥१४१॥
एवं यदा जगत्स्वामी देवदेवो जनार्दनः। अवतारं करोत्येषा तदा श्रीस्तत्सहायिनी ॥१४२॥
पुनश्च पद्मादुत्पन्ना आदित्योऽभूद्यदा हरिः। यदा तु भार्गवो रामस्तदाभूद्धरणी त्वियम्॥१४३॥
राघवत्वेऽभवत्सीता रुक्मिणी कृष्णजन्मनि। अन्येषु चावतारेषु विष्णोरेषानपायिनी ॥१४४॥
देवत्वे देवेदेहेयं मनुष्यत्वे च मानुषी। विष्णोर्देहानुरूपां वै करोत्येषात्मनस्तनुम् ॥१४५॥
यश्चैतच्छृणुयाज्जन्म लक्ष्म्या यश्च पठेन्नरः। श्रियो न विच्युतिस्तस्य गृहे यावत्कुलत्रयम् ॥१४६॥
पठ्यते येषु चैवेयं गृहेषु श्रीस्तुतिर्मुने। अलक्ष्मीः कलहाधारा न तेष्वास्ते कदाचन ॥१४७॥
एतत्ते कथितं ब्रह्मन्यन्मां त्वं परिपृच्छसि। क्षीराब्धौ श्रीर्यथा जाता पूर्वं भृगुसुता सती॥१४८॥

इति सकलविभूत्यवाप्तिहेतुः स्तुतिरियमिन्द्रमुखोद्गता हि लक्ष्म्याः ।
अनुदिनमिह पठ्यते नृभिर्यैर्वसति न तेषु कदाचिदप्यलक्ष्मीः ॥१४९॥

इति श्रीविष्णुमहापुराणे प्रथमेंऽशे नवमोऽध्यायः ॥९॥

जो मनुष्य सायंकाल औश्र प्रातःकाल इस स्तोत्र से मेरी स्तुति करेगा उससे मैं कभी भी विमुख नहीं होऊँगी ॥१३९॥ **श्रीपराशर महर्षि ने कहा—** हे मैत्रेय ! इस प्रकार से स्तोत्र के द्वारा की गयी आराधना से प्रसन्न होकर महाभागा श्रीलक्ष्मीजी ने इन्द्र को वरदान दिया ॥१४१॥ सर्वप्रथम लक्ष्मीजी महर्षि भृगु की पत्नी ख्याति देवी में उनकी पुत्री के रूप में उत्पन्न हुयी थीं, फिर उसके पश्चात् देवताओं और दानवों के प्रयास से अमृत मन्थन के समय समुद्र से उत्पन्न हुयीं॥१४१॥ इस तरह से जब जगत् के स्वामी देवाराध्य भगवान् जनार्दन अवतार लेते हैं, उस समय श्रीलक्ष्मीजी उनकी सहायिका रूप से अवतीर्ण होती हैं ॥१४२॥ जब भगवान् श्रीहरि आदित्य हुए उस समय लक्ष्मीजी कमल से प्रभा देवि के रूप में उत्पन्न हुयीं । जब भगवान् श्रीपरशुरामजी के रूप में अवतीर्ण हुए तब श्रीलक्ष्मीजी भूदेवी हो गयीं॥१४३॥ श्रीभगवान् के रामावतार के समय लक्ष्मीजी सीता रूप से अवतीर्ण हुयीं, और श्रीकृष्णावतार में वे श्रीरुक्मिणी के रूप में अवतीर्ण हुयीं । श्रीभगवान् के अन्य भी अवतारों में ये कभी श्रीभगवान् का साथ नहीं छोड़ती हैं ॥१४४॥ भगवान् के देवता रूप में अवतीर्ण होने पर ये देव शरीर को धारण कर लेती हैं, और मनुष्य शरीर धारण करने पर ये मानुषी हो जाती हैं । भगवान् विष्णु के शरीर के अनुरूप हीं ये अपना शरीर बना लेती हैं॥१४५॥ जो मनुष्य श्रीलक्ष्मीजी के जन्म की कथा को सुनेगा, पढ़ेगा उसकी तीन पीढ़ी तक उसके वंश में लक्ष्मी का अभाव नहीं होगा ॥१४६॥ हे मुने ! जिन गृहों में इस लक्ष्मी स्तुति का पाठ होता है उन घरों में कलह के आधारभूत दरिद्रता कभी नहीं रहती है ॥१४७॥ हे ब्रह्मन्! तुमने जो मुझसे लक्ष्मी के जन्म के विषय में पूछा था कि महर्षि भृगु की पुत्री लक्ष्मी समुद्र की पुत्री कैसे हुयी ? उसे मैंने तुम्हे बतला दिया ॥१४८॥ इस तरह से इन्द्र के मुख से निस्सृत तथा सम्पूर्ण ऐश्वर्यों की प्राप्ति के साधनभूत इस लक्ष्मी स्तुति का जो मनुष्य प्रतिदिन पाठ करते हैं, उनके गृह में कभी भी दरिद्रता का निवास नहीं होता है ॥१४९॥

इस तरह श्रीविष्णुमहापुराण के प्रथम अंश के नवें अध्याय का शिवप्रसाद द्विवेदी (श्रीधराचार्य) कृत हिन्दी अनुवाद सम्पूर्ण हुआ ॥९॥